

भारत में कोयले की काली लकीर India's Coal-ed Streak

रोहित चंद्रा

Rohit Chandra

November 21, 2011

यह समय सबसे अच्छा था ; यह समय सबसे खराब था ; यह युग समझदारी का था ; यह युग ही बेवकूफियों का था. कोयले की इस वर्तमान गतिशीलता की तुलना किसी षडयंत्र और 'दो शहरों की कथा' ('ए टेल ऑफ़ टू सिटीज़') के झंझावात से नहीं की जा सकती. यह कथा निश्चय ही आरंभिक भावनाओं को प्रतिबिंबित करती है और इससे इस क्षेत्र में चलने वाले घटनाचक्र का अंदाज़ा हो जाता है. हाल ही में बाज़ारी पूँजीवाद के संदर्भ में 'सबसे प्रतिष्ठित कंपनी' के रूप में कोल इंडिया के उदय होने की चर्चा समाचार पत्रों में गूँजती रही है. वित्तीय जश्न मनाने के बजाय पिछले कुछ वर्षों से भारत में कोयले की भारी कमी रही है, जिसके कारण राज्य सरकारें, सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों की पावर और इस्पात कंपनियाँ समय पर कोयले की डिलीवरी न होने की लगातार शिकायतें करती रही हैं.

घरेलू कोयले के सुरक्षित भंडार से काफ़ी मात्रा में कोयला निकालने की भारत की क्षमता में गिरावट आने के कारण उसकी नीति पर भी मूल रूप में इसका असर पड़ा है. कोयला मंत्रालय द्वारा निष्पादित नवीनतम कोयला ईंधन आपूर्ति करार (FSA) बिजली संयंत्रों की ईंधन संबंधी 75 प्रतिशत आवश्यकताओं को पूरा करने की गारंटी देते हैं; शेष की पूर्ति निजी तौर पर की जानी चाहिए. यदि कोयला ईंधन आपूर्ति करार (FSA) निष्पादित हो भी जाए, जो अपने आपमें संपर्क अनुमोदन प्रक्रिया की जटिलताओं को देखते हुए बेहद अनिश्चित है तो भी रेल और सड़क मार्ग के मिले-जुले रूप के कारण स्रोत स्थल से ले जाकर गंतव्य स्थल पर उन्हें खाली करने-कराने के तौर-तरीकों और उसके लिए जिम्मेदार एजेंसियों द्वारा लॉजिस्टिकल प्रबंधन के कमज़ोर समन्वयन के कारण और भी नुकसान और देरियाँ होती रहती हैं. इस बात को लेकर हैरानी भी नहीं होनी चाहिए कि बड़े-बड़े कोयला उपभोक्ता बेहतर किस्म के कोयले को चुनने के लिए उसे उन देशों से आयातित करने पर आमादा होने लगे हैं, जहाँ पर करार और लॉजिस्टिक्स से संबंधित दायित्वों का पूर्वानुमान किया जा सकता है. इसकी प्रतिक्रिया में कोयला निर्यातक देशों- और अभी हाल ही में इंडोनेशिया ने- भी कोयले की बढ़ती माँग को देखते हुए उसकी कीमत में बढ़ोतरी और विनियमों में परिवर्तन करना शुरू कर दिया है.

आशा है कि भारत अगले कुछ वर्षों में एक मिलियन टन से अधिक कोयले का आयात करेगा. क्या कारण है कि कोयले का घरेलू उत्पादन माँग को पूरा करने में विफल रहा है? हालाँकि इस बारे में बहुत-से स्पष्टीकरण दिए जा चुके हैं, फिर भी यह एक ऐसा सवाल है जिसका जवाब कदाचित् सबसे कठिन है. कुछ लोग कहते हैं कि पर्यावरण संबंधी स्वीकृति और भूमि अधिग्रहण ही मुख्य बाधाएँ रही हैं. कुछ लोग इसका दोष राज्यों द्वारा स्वाधिकृत कोयला कंपनियों पर मढ़ देते हैं जो अपने परिचालन में आधुनिक खनन की परिपाटियों और प्रौद्योगिकी को प्रभावशाली रूप में अपनाने में असमर्थ रहे हैं. सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की कोयला कंपनियों के इन पुराणपंथी मालिकों की काफ़ी आलोचना भी हुई है; इनके कई मालिकों ने तो उत्पादन के लिए ब्लॉक

ला पाने में विफल होने के बाद अपने आबंटित ब्लॉकों को अनाबंटित भी करा दिया. किस्सागोई की तरह आपराधिक तत्वों के साथ कोयला उद्योग की मिली-भगत और उसके फलस्वरूप होने वाली चोरी और ग्रेड की गुणवत्ता को कम करने की वारदातों को भी समझा जा सकता है. यही कारण है कि घरेलू उद्योग में वर्तमान कमी के सही कारणों को समझना इतना आसान नहीं है. परंतु एक बात तो साफ़ है कि परंपरागत बाज़ार की अपेक्षित क्षमताओं का पूरा उपयोग नहीं हो पाया है.

भारतीय कोयला बाज़ार एक अजीबोगरीब दानव है. कोल इंडिया लिमिटेड (CIL), सिंगरेनी कोल कोलियरी लिमिटेड (SCCL) और नेवेली लिग्नाइट कॉर्पोरेशन (NLC) के बीच राज्यों की स्वाधिकृत कंपनियों के उत्पादन के अल्पाधिकार की भरपाई ऐतिहासिक रूप में क्रय के एकाधिकार द्वारा की जाती रही है. उदारीकरण से पहले तक कोयले के सबसे बड़े औद्योगिक उपभोक्ता अर्थात् बिजली, लोहा व इस्पात और सीमेंट के कारखाने भी ज़्यादातर राज्यों के स्वाधिकृत कारखाने ही रहे हैं, लेकिन वास्तव में रेलवे ही एक ऐसी संस्था है जिसके पास कोयले को बड़े पैमाने पर उठाने और उसे वितरित करने की अच्छी-खासी मूल्य-शक्ति है. उदारीकरण के बाद जब ये जिम्मेदारियाँ CIL को औपचारिक रूप में सौंप दी गईं, तब कोयला मंत्रालय ने 2000 के दशक की शुरुआत तक मूल्यों पर नियंत्रण बनाए रखा. फिर भी आयात-समानता के मूल्यों पर केवल कोयले के उच्चतम ग्रेड ही बेचे गए और भारत का अधिकांश उत्पादन निचले ग्रेड का होने के कारण कम मूल्य पर बेचा गया और हो सकता है कि इन मूल्यों का निर्देश अनिवार्य वस्तुओं, खास तौर पर बिजली की लागत को कम रखने के लिए कदाचित् कोयला मंत्रालय द्वारा दिया गया था. सन् 2011 के आरंभ में CIL ने विभेदक मूल्य प्रणाली शुरू की, जिसके आधार पर बाज़ार-संचालित क्षेत्रों के लिए उच्चतर मूल्य तय किए गए.

इन बदलती हुई मूल्य-व्यवस्थाओं के बावजूद काले बाज़ार को छोड़कर खुले बाज़ार में थोक में कोयला खरीदना सचमुच बहुत कठिन है. भारत के छह सौ मिलियन टन के घरेलू कोयला उत्पादन में से लगभग 80 प्रतिशत का आबंटन कोयला मंत्रालय की प्रशासनिक समितियों के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों के सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के आवेदकों को किया गया. अतिरिक्त 10 प्रतिशत की बिक्री ऑन-लाइन ई-नीलामी के माध्यम से किया गया, जिसके परिणामस्वरूप अच्छा-खासा राजस्व भी मिला है. 2009-10 में ई-नीलामी मूल्य औसतन अधिसूचित मूल्यों से लगभग 60 प्रतिशत ऊपर रहा. अवरुद्ध कोयला ब्लॉक, जिन्हें जल्द ही प्रतियोगी बोलियों के माध्यम से सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के कंपनियों को आबंटित कर दिया जाएगा, 19 प्रतिशत अतिरिक्त था. अंततः घरेलू कोयला उत्पादन का आखिरी 1 प्रतिशत राज्य सरकार की एजेंसियों को, जो इसे स्थानीय बाज़ारों को उपलब्ध करा देते हैं, आबंटित कर दिया जाता है.

कोयले के कम मूल्य के पीछे का तर्क था कि बिजली, इस्पात और सीमेंट का परिणामी उत्पादन अनिवार्य था और वृद्धि को बढ़ावा देने के लिए उसकी कीमत कम करना ज़रूरी था, लेकिन आर्थिक सलाहकार के कार्यालय से हाल ही के मूल्यों के आंकड़ों को देखते हुए 2004 से 2011 तक कोयले के मूल्य में 89 प्रतिशत वृद्धि हुई, जबकि बिजली, इस्पात और सीमेंट के मूल्यों में क्रमशः 13 प्रतिशत, 26 प्रतिशत और 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई. उसी अवधि में थोक मूल्य सूचकांक में 54 प्रतिशत वृद्धि हुई. जहाँ एक ओर बिजली के मूल्य विनियमित

कर दिए गए, वहीं दोनों पण्यों के मूल्य का विनियमन नहीं हुआ है, जिसका अर्थ यह हुआ कि इन दोनों उद्योगों ने कोयले के बढ़ते मूल्यों को पर्याप्त रूप में आत्मसात् करते हुए उनका प्रबंधन कर दिया. यदि स्थिति यही है तो कृत्रिम रूप से कोयले के कम मूल्य के रूप में सहायता की इनपुट राशि का तर्क काफ़ी कमज़ोर है, लेकिन मूल्य-निर्धारण मूलभूत समस्या भी नहीं है.

कोयले की आपूर्ति की निगरानी के लिए विकसित प्रशासनिक प्रणाली बहुत जल्द ही अपनी विश्वसनीयता खोने जा रही है. बिजली के क्षेत्र की क्षमता, शायद कुछ मूर्खतापूर्ण लगे, लेकिन कोयले की आपूर्ति की क्षमताओं से कहीं आगे निकल गई है. इस समय चलने वाले कई संयंत्र, खास तौर पर वे संयंत्र जो राज्य के क्षेत्र में हैं, अपनी क्षमता से बहुत कम काम कर रहे हैं. पिछले साल वर्तमान संविदागत करारों को पूरा करने में सक्षम न होने के कारण ही बहुत कम कोयला ईंधन आपूर्ति करारों (FSAs) पर हस्ताक्षर हो पाए हैं. पिछले कुछ महीनों में श्रमिक संकट, भारी वर्षा और तेलंगाना विरोध के कारण इस प्रणाली की ऐसी कमी भी सामने आई है, जिसके कारण बिजली के संयंत्रों में कोयले के भंडार कम होने लगे और अनेक दक्षिणी राज्यों में लंबे समय तक बिजली की कटौतियाँ होने लगीं.

ऐसी अप्रत्याशित परिस्थितियों में निजी क्षेत्र में भी जोखिम बढ़ने के कारण उत्साह में कमी दिखाई पड़ने लगी. CIL के मूल्य-निर्धारण के उत्साह से भरे सारे प्रयासों पर बार-बार पावर क्षेत्र द्वारा पानी फेर दिया गया. यदि इन्हें उचित रूप में कार्यान्वित किया जाए तो इससे पावर क्षेत्र में सैद्धांतिक रूप में स्थितियों में सुधार आ जाएगा, लेकिन बढ़िया कोयले की डिलीवरी में CIL के खराब रिकॉर्ड के कारण कई ऑपरेटर भारी रद्दोबदल करने के बजाय स्थिति को यथावत् बनाये रखना ही पसंद करते हैं. इस प्रकार का संतुलन, जहाँ कोई भी पक्ष पूरी तरह से निकम्मी पड़ी इस प्रणाली में कोई भारी परिवर्तन नहीं चाहता, बहुत समय तक नहीं चल सकता.

इस प्रकार की समस्याओं का कोई सरल समाधान नहीं है, इसलिए इन पर गंभीर विचार मंथन की आवश्यकता है. रणनीतिक कारणों से विदेशों से कोयले के संसाधन मँगवाने की बात ठीक तो लगती है, लेकिन इस बात को मद्देनज़र रखते हुए कि कोयले की किसी खान को पूरी तरह से विकसित करने में पाँच से सात साल तक का समय लगता है, अपने देश में ही कुछ अल्पकालिक उपायों की आवश्यकता तो होगी ही. कोयले के क्षेत्र में सुधारों पर शंकर समिति की रिपोर्ट में चार साल पहले कई ऐसी समस्याओं की भविष्यवाणी की गई थी और उस समिति की सिफ़ारिशों पर कार्रवाई करने में कुछ समय तो लगेगा ही. अनेक महत्वपूर्ण सवालों पर विचार करना होगा. उदाहरण के लिए पिछले बीस वर्षों में भारतीय कोयला खनन कंपनियों की उत्पादकता में बदलाव कैसे आया? कोयले की आपूर्ति की लाइनें कैसे चलती हैं और इस प्रक्रिया में बाधाएँ और विचलन कहाँ हैं? क्या भारत अपनी घरेलू खानों से इष्टतम मात्रा में कोयला निकाल सकता है? क्या यह संभव है कि वर्तमान कानूनी ढाँचे के भीतर अधिक खुले कोयला बाज़ार में संक्रमण किया जा सके? इन सवालों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद ही पिछले कुछ वर्षों से इस क्षेत्र में चली आ रही समस्याओं के लगातार समाधान की कोशिशें रंग ला पाएँगी.

रोहित चंद्रा भारतीय उच्च अध्ययन केंद्र अर्थात् “कैसी”(CASI) में अनुसंधान समन्वयक हैं.

हिंदी अनुवाद: विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार

<malhotravk@hotmail.com>

